International Journal of Trend in Scientific Research and Development (IJTSRD)
Volume 6 Issue 5, July-August 2022 Available Online: www.ijtsrd.com e-ISSN: 2456 – 6470

समकालीन हिन्दी उपन्यास में स्त्री विमर्श

Pratima Khatumra

Assistant Professor, Hindi, S.D. Government College, Beawar, Rajasthan, India

सार

समकालीन हिन्दी उपन्यास की केंद्रीय पात्रा 'प्रिया' मारवाड़ी समाज की घुटन भरी संस्कृति से लेकर कॉर्पोरेट कल्चर तक शोषण का शिकार होती है। परिवार, प्रेम-संबंध, वैवाहिक जीवन आदि प्रत्येक स्तर पर स्त्री किस प्रकार पुरुष शोषण का शिकार होती है, इसका अनावरण लेखिका ने स्तब्धकारी ढंग से किया है। स्त्री साक्षात शक्ति है। सृष्टि के विकास क्रम में उसका महत्वपूर्ण स्थान है। वह सौंदर्य, दया, ममता, भावना, संवेदना, करुणा, क्षमा, वात्सल्य, त्याग एवं समर्पण की प्रतिमूर्ति है। इन्हीं गुणों के कारण उसे देवी कहा जाता है।"यत्र नार्यस्तु पूज्यंते रमंते तत्र देवता": अर्थात् जहाँ नारियों को मान सम्मान होता है, वहाँ देवताओं का वास होता है। प्राचीन काल से लेकर वर्तमान काल तक भारतीय स्त्रियों की स्थिति में काफी उतार चढ़ाव आए हैं। वैदिक युग में नारी का जीवन काफी उन्नत एवं परिष्कृत था। ऋग्वेद में स्त्री को यज्ञ में ब्रह्मा का स्थान ग्रहण करने योग्य बनाया है। रामायण और महाभरत काल में स्त्रियों का वर्णन विदूषियों के रुप में कम, गृहस्वामिनी के रुप में अधिक मिलता है। आधुनिक नारी बाहरी तौर पर काफी आगे पहुँची है, लेकिन जितना पहुँचना चाहिए था वहाँ तक नहीं पहुँच पाई है। स्त्री-विमर्श के युग में स्त्री की स्थिति में आये सब से महत्वपूर्ण परिवर्तन यह है कि वह पुरुष के समान ही जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में कार्यरत है, लेकिन इसके लिए उसे भीतर और बाहर दोनों ओर से टूटना पड़ता है। वह दिन भर नौकरी करके घर लौटती है, तो उसे पारिवारिक दायित्व भी निभाना पड़ता है। इस संदर्भ में मैत्रेयी पुष्पा जी का वक्तव्य यह है कि "पुरुष के लिए सबसे बडी चुनौती स्त्री ही है। उसको वश में करने के लिए वह जिंदगी भर न जाने कितने प्रयास करता है कि किसी तरह औरत के वजूद को तोड सके।

How to cite this paper: Pratima Khatumra "Stree Discourse in Contemporary Hindi Novel" Published in International Journal of Trend in Scientific Research and Development (ijtsrd), ISSN: 2456-6470, Volume-6 | Issue-5, August 2022, pp.1186-1193, URL: www.ijtsrd.com/papers/ijtsrd50620.pdf

IJTSRD50620

Copyright © 2022 by author (s) and International Journal of Trend in Scientific Research and Development Journal. This is an Open Access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution License (CC BY 4.0) (http://creativecommons.org/licenses/by/4.0)

परिचय

पुरुषों की निगाहों में स्त्रियाँ उपेक्षिता ही रही हैं। पुरुषों ने उनके स्वतंत्र व्यक्तित्व के निर्माण के लिए कभी कोई सुविधा नहीं दी है। जब स्त्रियाँ मानवीयता के लिए प्रतिवाद करती हैं तो उसकी स्वतंत्रता को नकारात्मक अर्थों में ही ग्रहण किया जाता है। समाज में आज भी समूचे मूल्य पुरुष द्वारा निर्मित है। क्षमा शर्मा के अनुसार "पुरुष पचास औरतों के साथ संबंध रखकर अच्छा कहला सकता है, अपने घर लौट सकता है। स्त्री एक प्रेम करके चरित्रहीन कही जा सकती है और अफसोस यह है स्त्री की उस छवि को बनाने में न धर्मशास्त्र पीछे है न ही साहित्य।"[1,2] आज की नारी अपनी शक्ति पहचान ली है। आज वह राष्ट्र निर्माण में महत्वपूर्ण हिस्सेदारी निभा रही है। लेकिन यह संख्या अत्यल्प है । नारियों के अधिकारों की रक्षा के लिए महान उत्तरदायित्व का निर्वाह उन प्रबुद्ध स्त्रियों को करना होगा जिन्होंने समाज में अपना विशिष्ट स्थान बनाने में सकलता प्राप्त की है। स्त्री-विमर्श, स्त्री की शोषण से मुक्ति चाहता है, ताकि वह स्वतंत्र ढंग से जी सके और सोच सके। वह पूर्ण स्वाधीन हो। समाज की निर्णायक शक्ति हो। कात्यायनी के अनुसार "स्त्री विमर्श अथवा नारीवाद पुरुष व स्त्री के बीच नकारात्मक भेदभाव की जगह स्त्री के प्रति सकारात्मक पक्षपात की बात करता है। वस्तुतः इस रुप में देखा जाए तो स्त्री-विमर्श अपने समय और समाज के जीवन की वास्तविकताओं तथा संभावनओं की तलाश करनेवाली दृष्टि है।"

स्त्री-विमर्श के बारे में लता शर्मा कहती है कि "स्त्री विमर्श स्त्री को स्वयं को देखने – जाँचने- परखने का पर्याय है। आज तक हम अपने बारे में अपनी आशाओं – आकांक्षाओं के बारे में जो कुछ भी जानते हैं, किसी संत-महात्मा विचारक – मनीषी का लिखा पड़ा है। हम स्वयं को अपनी ही दृष्टि से तौलने, परखने – यह नवीन आयाम है।" स्त्री विमर्श से संबंधित मैत्रेयी पुष्पा का विचार इस प्रकार है कि "नारीवाद ही स्त्री विमर्श है, नारी की यथार्थ स्थिति के बारे में चर्चा करना ही स्त्री विमर्श है।" स्त्री-चिंतन आज विश्व चिंतन की बहसे में सबसे सशक्त चिंतन इसलिए है कि इस में अरबों, करोडों स्त्रियों का दमन, अन्याय एवं उत्पीडन से मुक्ति की सोच निहित है। महिला संबंधित कानून के विशेषज्ञ और लेखक अरविंद जैन कहते है कि "आज के समय में औरतें बदलीं, पुरुष नहीं बदले। परिवार संस्था और विवाह संस्था यथातथ है। परिवार में बहु की स्थिति बहुत ज्यादा नहीं बदली है। आज भी उसे संपत्ति का अधिकार नहीं है न मायके में, न ससुराल में।" यह सर्वविदित बात है कि कोई भी रचना हो स्त्री पात्र के बिना सोच भी नहीं सकते हैं, परंतु सवाल यह है कि किस प्रकार चित्रित किया है। विमर्श के संदर्भ में विचार करते वक्त साधारणतः इन बिंदुओं के आधार पर चर्चा करते हैं। [3,4]

1. स्त्री-शोषण 2. संघर्षशील स्त्री 3. परंपरागत आचार संहिता को चुनौती 4. सार्वजनिक भूमिका में स्त्री।

समकालीन हिन्दी उपन्यासकारों में विचारों की परिपक्वता और गहन मानवीय संवेदना को उकेरने की कला में मैत्रेयी पुष्पा काफी चर्चित हैं। उनके उपन्यास 'इदन्नमम' में बुंदेलखंडी बोली की लय में जीवंत और धारदार भाषा के साथ ग्रामीज समाज में उभरती स्त्री-चेतना की सशक्त अभिव्यक्ति हुई है। मैत्रेयी पुष्णा ने 'इदन्नमम' में प्रेम के माध्यम से उन भारतीय स्त्रियों को लेकर लिखा है जो पुरुष प्रधान समाज में सदियों से तरह-तरह से अधिकार वंचित और काम शोषित होती आयी है। मंदा की माँ प्रेम को भगा ले जानेवाला रतन यादव उपन्यास में कहीं प्रकट नहीं होता है। उसका सिर्फ सूचित परिचय मिलता है। प्रेम का अपहरण करनेवाला रतन यादव का एक मात्र उद्देश्य उसकी संपति हथियाना है। लेकिन जब वह घर से गायब होती है तब पुरुष ही नहीं स्त्री वर्ग भी उस पर कामवासना का आरोप लगाती हैं। "अपहरन काहे। अपहरन होता बऊ का न हो जाना। जे भी तो भर ज्वानी में विधवा हुई थीं। जे कहो कि मस्तानी हती। ज्वानी की मारी। सो बिना खसम के रहाई नहीं आई।" एक विधवा का वेश्या या भिक्षुणी बनना इस समाज को बर्दाश्त हो सकता है। एक विधवा को सती हो जाने के लिए यह समाज मजबूर कर सकता है लेकिन दूसरे विवाह के लिए नहीं, क्योंकि परिवार की प्रतिष्ठा कानून से भी ऊपर है। 'इदन्नमम' में कुसुमा का उदाहरण भी स्त्री शोषण की चरम सीमा है। कुसुमा गरीब की लड़की होने के कारण उसे छोड़ देते हें। पत्नी का अधिकार उससे छीन लिए थे। लेकिन जब कुसुमा दाऊ जी की वजह से गर्भवती हुई तो उसे कुलटा कहकर पीटने का अधिकार उसने नहीं छोड़ा था। "खून पी जाऊँगा इस दुष्टनी का या पीट-पीट कर गाँव से बाहर कर दूँगा कुलटा को। "इतना होने के बावजूद भी बच्चे को जन्म देती है। अंत में दाऊ जी की मृत्यु के बाद वह सफेद वस्त्र धारण कर लेती है।[5,6]

'शाल्मली' नासिरा शर्मा का बहुचर्चित उपन्यास है। शादी के बाद शाल्मली के जीवन में एक ही ध्वनि गूँजती थी कि नरेश पति है और वह पत्नी। स्वामी और दासी का संबंध शाल्मली और नरेश के बीच एक मजबूत दीवार का रुप धारण करने लगी थी। नरेश हमेशा यह वाक्य कहता था कि "तुम ठहरी एक आधुनिक विचार की महिला.... विचारों में स्वतंत्र, व्यवहार में उन्मुक्त, तुम्हारे संस्कार...." यह वाक्य नरेश हमेशा रटता रहता है। नरेश का यह वाक्य सुनते-सुनते शाल्मली को आधुनिक शब्द से घृणा होने लगी थी। शाल्मली समय से पहले जीवन संघर्ष में खूद पड़ी थी। कम उम्र में ही कामकाजी लड़की बन चुकी थी। उम्र से ज्यादा उस में एक गंभीरता आ चुकी थी। वह नरेश को पूरी तरह समझ गयी थी। लेकिन सवाल समझने का नहीं, उसके नकारात्मक व्यक्तित्व में अपने विकास द्वारा ढूँढ़ने का था। नरेश की राय में घरेलू काम पत्नी की जिम्मेदारी है। अपने दोस्तों के लिए भोजन बनाने पर भी उसमें हाथ बाँटने को नरेश तैयार नहीं होता है। उसकी दृष्टि में पत्नी हमेशा पति के अधीन रहना चाहिए। शाल्मली बुखार होने के बावजूद भी नरेश के दोस्तों के लिए खाना बनाकर देती है। नरेश की पत्नी की बीमारी से अधिक दोस्तों की चिंता ही सताती है। सारे दोस्त जाने के बाद काम में कुछ मदद करने के लिए अनुरोध करने से वह कहता है कि "घर औरत का होता है, वह जानो। कमाना मर्द का काम है, वह मैं करता हूँ। आफिस के काम में तुम्हारी सहायता लेता हूँ कया?..ओ...के...गुड नाईट।" समस्याओं के बीच ही स्त्रियों का सफर शुरु होता है और अंत भी। आज के बदलते दौर में जीवन मूल्य बदल रहे हैं। स्त्रियों के जीवन में कुछ समस्यायें ऐसी हैं जो सामाजिक व्यवस्था से उत्पन्न हुई हैं और कुछ समस्यायें ऐसी हैं जो स्त्री होने के कारण उत्पन्न हुई हैं। ये समस्यायें पितृसत्तात्मक व्यवस्था द्वारा दी गई हैं। सामाजिक दृष्टिकोण नहीं बदलेगा तो समस्यायें बनी रहेगी।[7,8]

चर्चा

मैत्रेयी पुष्पा के समूचे कथा साहित्य में नारी अपनी अस्मिता और अस्तित्व के लिए संघर्ष करती दिखाई देती है। यह संघर्ष समाज से है, रुढियों से है, थोपी गयी परंपराओं से है और पुरुष की अहं में लिपटी मानसिकता से है। मैत्रेयी पुष्पा की नारियाँ स्वयं ही अपनी लड़ाई लड़ती हैँ और पुरुष के वर्चस्व को तोडने का प्रयास करती है। 'इदन्नमम' उपन्यास की नायिका मंदा अकेले ही सारे पुरुष समाज से टकराती है। अपने ऊपर हो रहे अन्याय और अत्याचार को वह चुप सहन नहीं करती, अपितु उसका मुकाबला करती है। 'इदन्नमम' में परित्यक्ता कुसुमा दाऊ जी के साथ संबंध रखना बहुत बड़ा कदम है। इस संबंध में कुसुम् मंदा से कहती है कि "बिन्नु यह जल निर्मल है या मैला? पवित्र है या पाप का? इमरत है निस? नहीं जानते हम। तुम्हारी रामायन में लिखा भी होगा तो लिखनेवाला यह नहीं जानता है कि आदमी जब प्यासा होता है, प्यास से मर रहा होता है तो कहाँ देखता है, कहाँ सोचता है, कहाँ करता हैं कोई भेद? कोई अंतर?" कुसुमा के मन में दाऊ जी के साथ अपने संबंध को लेकर कोई अपराधबोध की भावना नहीं है। इसलिए जब वह गर्भवती होती है तब भी वह डरती नहीं है। "जैसे ही पूछा कि भाईयों का कौल खाकर बना कुसुमा, यशपाल कबहूँ नहीं आया तेरे हिरकाँय(पास)? कुसुमा भाभी ने घूँघट में एक नजर सास को देखा, फिर सबको निहारा और सिर हिला दिया, अर्थात् नहीं, कभी नहीं।" कुसुमा के मन में लेशमात्र भी अपराधबोध नहीं। पाप-पुण्य, सही-गलत की परिभाषायें उसे झूठ लगती है। कुसुमा के चरित्र में संघर्षशील नारी का रुप उकेरा गया है। सूर्यबाला का प्रमुख उपन्यास 'यामिनी' की कथा स्त्री मन की तीव्र संवेदनात्मक धरातल से विकसित होती है। [9,10]

यामिनी का मानसिक संघर्ष इस में चित्रित किया है। यामिनी मामूली स्त्री नहीं है, वह अपने पति विश्वास से जो प्यार चाहती है वह शारीरिक से ज्यादा मानसिक है। विश्वास मानता है कि वह अपनी पत्नी की सारी ख्वाहिशें पूरी कर रहा। इससे ज्यादा देने के लिए उसके पास कुछ भी नहीं है। यामिनी पूछती है कि "तो मेरी सबसे बडी विडंबना यही है कि मैं आपके जीवन में तब आई जब आपके पास देने लेने के लिए कुछ है ही नहीं।" यह सुनकर विश्वास को गुस्स आता है। उसे लगता है कि यामिनी ने उसके पुरुषत्व को चुनौती दी है। लेकिन यामिनी स्पष्ट करती है कि "सुनिए मैं शरीर की बात नहीं कर रही। आपके शरीर ने मुझे बहुत कुछ दिया, लेकिन पुरुषत्व को सिर्फ शरीर की सीमा में बाँध कर नहीं देखती। आप भी ऐसा कर उसकी बेइज्जती मत कीजिए। पुरुषत्व की सीमा शरीर से कहीं ज्यादा भव्य होती है। मैं उसी भव्यता और ऊँचाई की बात कह रही हूँ।" यामिनी की बात को समझने की क्षमता विश्वास में नहीं है। दोनों के संबंध में जो तनाव एवं संघर्ष को सूर्यबाला ने संवादों के जरिए व्यक्त किया है।परंपरागत आचार संहिता को चुनौती :'इदन्नमम' में कुसुमा ने

परंपरागत आचार संहिता को चुनौती देकर नारी जीवन की सार्थकता को स्थापित किया है। कुसुमा भाभी के चरित्र द्वारा मैत्रेयी पुष्पा ने नारी की दृढ संकल्पों से निर्मित व्यक्तित्व को प्रस्तुत किया है । पति यशपाल द्वारा परित्यक्ता कुसुमा जन्म से रुग्ण दाउजी से प्रेम करती है। "बिन्नु सौ बातों की एक बात है, नाते संबंध का नाम बनाएँ, गढे बेकार है। साँचा नाता तो प्यास और पानी का है।" कुसुमा भाभी सामाजिक वर्जनाओं पर खुली चुनौती बनकर उभरती है। इसके बदले उसे प्रबल विरोध सहना पड़ता है। परंतु परंपरागत आचार संहिता के विरुद्ध वह मानती है कि जब देह धारण की है तब इसकी आवश्यकताओं की पूर्ति अनिवार्य है। हक है इस देह का। कुसुमा अपने प्रेम के फलस्वरुप प्राप्त संतान पर गर्व भी करती है। "हमारे कुँवार तो नहीं हैं ब्याहे की संताना। यह बात तो हम गा गाकर कह रहे हैं।" किशोरी मंदा के साथ कैलास मास्टर बलात्कार करता है तो कुसुमा भाभी उसको सहारा देती है। "अपराधी तो वह है, जिसने यह अजस...छल – बल से कुकरम.. छुतैला और अपवित्तर भी हुआ- बढ़िया कैलास मास्टर, उसकी जान हुई मैली, जो हम धोखे से करती है हमला।"[11,12]

स्त्री और पुरुष दोनों का मान-सम्मान बराबर होना चाहिए। पुरुष द्वारा बलात्कार होने पर स्त्री अपवित्र मानी जाती है, लेकिन पुरुष नहीं। कुसुमा भाभी इसके खिलाफ आवाज़ उठाती है। मंदा से वह कहती कि मन की पवित्रता ही सर्वोपरि है। नासिरा शर्मा 'कृत ठीकते की मँगनी की नायिका महरुख भी पुरुष वर्चस्ववादी अहंकार से आहत होती है। महरुख समय से समझैता करना पसंद नहीं करती है। परिस्थितियों से संघर्ष करती हुई रुढिगत तथा परंपरागत आचार संहिता को चुनौती देकर अपनी जिंदगी का निर्णय खुद लेती है। वास्तव में मनुष्य की सबसे बड़ी पूंजी यही है। 'ठीकरे की मँगनी' में लेखिका नासिरा शर्मा ने महरुख की संघर्ष यात्रा का चित्रण किया है। महरुख ने गाँव की औरतों का दिल जीत लिया था। वह कमज़ोर बच्चों को शाम को घर में बुलाकर पढ़ाती थी। महरुख के सामने जिंदगी की सिर्फ एक मंजिल थी, वह थी स्कूल। अलका यह आत्मसमर्पण देखकर डॉ. विमला कहती है कि "मेरा विश्वास है कि तुम जरुर कोई ऐसी महान आत्मा हो, जो बिरले ही धरती पर जन्म लेती है।" 'ठीकरे की मँगनी' की महरुख में अकेलेपन की पीडा, संत्रास, कुंठा नहीं है। उसे इस बात का अहसास है कि उसकी जिंदगी आगामी पीढ़ी के लिए एक उदाहरण है। महरुख का कथन समकालीन नारी की सोच को दिखाता है जो समय की धारा में, भविष्य के लिए नयी संभावनाओं के द्वारा खोलकर स्त्री को एक स्वतंत्र अस्थित्व प्रदान करती है। सार्वजनिक भूमिका में स्व को अर्जित करने में एक स्त्री को संघर्ष के जिस कठिन रास्ते पर चलना पड़ता है वह पूर्ण रुप से महरुख के माध्यम से दर्शाया गया है। आधुनिक हिंदी उपन्यासों में स्त्रीवादी लेखिकों ने विभिन्न पात्रों के माध्यम से वर्तमान सामाज में स्त्री के बारे में यथर्थ चित्रण किया है। मैं अंत में मैत्रेयी पुष्पा के इन शब्दों से समाप्त करना चाहता हूँ।"आनेवाली सदी की माँग है कि पुरुष मानसिकता में परिवर्तन आए और वह बेझिझक किसी भी आशंका और असुरक्षा से मुक्त होकर आती हुई स्त्री का स्वागत करे। मेरे विचार से यह सदी स्त्री के अस्थत्व की थी, अगली शताबदी उसके व्यक्तत्व की होती ।"[13]

परिणाम

मत्र नार्मस्तु पूज्यन्ते, रमन्ते तत्र देवताः।

जहाँ नारी की पूजा होती है वहाँ देवता बसते हैं। वैदिक साहित्य में नारी के उदात्त एवं विशेष व्यक्तित्व की अभिव्यंजना हुई है। समाज ने कर्तव्य और अधिकारों का बटवारा पुरुष और नारी में स्वभावतः रुचि और शक्ति के अनुकूल कर लिया था। इसलिए नारी के प्रति मनु का कथन है कि -

पिता रक्षति कौमारे भर्ता रक्षति यौवने।

रक्षंति स्थावरे पुना न स्त्री स्वातंत्रम मर्हति।।

अर्थात नारी जब कुँवारी रहती है, तब पिता के आश्रम में युवावस्था में पति के आश्रम में, बुढ़ापे में पुत्र के आश्रम में रहने के कारण नारी की स्वातंत्र नहीं है।

परिवर्तित इस समाज में स्त्री अपनी बुद्धि - शक्ति को प्रदर्शित करते हुए सभी क्षेत्रों में पदार्पण कर चुकी है। किंतु पुरानी परंपरा तथा दकियानूसी पद्धतियों से पूरी तरह कहर नहीं निकली है। क्योंकि पुरुष जैसा भी हो आज भी वह पति को परमेश्वर ही मानती है। किंतु पुरुष स्त्री को केवल जाना है, पर समझा नहीं। इस समाज में पुरुष से शोषित, पीड़ित, अपमानित नारी अपने अस्तित्व की तलाश कर रही है। क्मोंकि भारतीय स्त्री का हृदम ममता, सेवा, दमा, त्याग, क्षमा आदि गुणों से भरा हुआ है। इस के बदले में उसको अपमान तथा शोषण को सहना पड़ता है।

पुरुष से उपेक्षित स्त्री अपना अस्तित्व बनाए रखना चाहती है। समाज में मान - सम्मान के साथ पुरुष की बराबरी करने के लिए स्त्री शिक्षित होकर आर्थिक दृष्टि से स्वावलंबी हो चुकी है। हिंदी कहानी साहित्म में स्त्री के विविध पहलुओं को उजागर किमा गमा है। स्त्री माँ, बहन, पत्नी, सास, सहेली, प्रेमसी, भाभी, बेटी, बहू आदि के रूप में पुरुष के जीवन से जुड़ी हुई है। इस परिवर्तनशील समाज में आज भी स्त्री सुरक्षित नहीं है। दयनीय अवस्था, कामभावना, पुरुष द्वारा शोषण आदि समाज में घटनेवाली समस्माओं का सामना करती हुई जी रही है। पुरुष प्रधान समाज में आज नारी रुढ़ियाँ को तोड़कर मुक्त रूप से जीने की जिजीविषा रखती है। भारतीय समाज व्यवस्था में दमित स्त्री समाज में उभरकर आना चाहती हैं। इसलिए पुरुष की पराधीनता तथा दासता को ठुकरा दिया। और अपने विचारों को मन की दृढ़ता के साथ अभिव्यक्त करने का साहस करने लगी। आज की नारी अन्याय सहनेवाली नहीं है। वह अपने अधिकारों के प्रति सचेत हो गई है। आधुनिक स्त्री शिक्षित होने के कारण वह अपना निर्णम लेने के लिए सक्षम है।

प्रेमचंद युग में नारी की सामाजिक वैवाहिक रुढ़ियाँ, विधवा विवाह, स्त्री शिक्षा, पर्दा प्रथा, नारी पुरुष में समान आदि में अधिक परिवर्तन हुए। आज स्त्री व्यावहारिक जीवन को ही महत्व देती है। पुनर्जन्म पर विश्वास नहीं करती है। और न ही सात जनम में पति का संबंध वाली बात को मानती है।[14,15]

सभ्यता के विकास के साथ नारी की उन्नति की दिशाएँ बदली है, लेकिन संस्कारवश स्त्री आज भी समर्पण की प्रतिमूर्ति बन जाती है। घर में छोटी छोटी खुशियाँ से ही अपने जीवन को सार्थक समझती है। प्रेमचंदजी की बड़े घर की बेटी कहानी में आनंदी ससुराल में अपने देवर से अपमानित होकर भी उसको कुछ नहीं कहती है। उसको माफ कर देती है। आनंदी के देवर ने गुस्से से

खड़ाऊँ उठाकर फेंकी तो आनंदी अपना घर बचालेती है। किंतु उंगली में बड़ी छोट आती है। गालियाँ भी खाती है। अन्याय होने पर भी उसका विरोध नहीं करती देवर को माफ कर देती है।

नारी आज केवल रमणी या पत्नी नहीं रही बल्कि घर के बाहर समाज का एक विशेष, अंग और महत्वपूर्ण नागरिक के रूप में प्रस्तुत हुई है। बदली हुई परिस्थितियों में नारी भले ही नौकरी करके आर्थिक सबलता प्राप्त की है। किंतु कामकाजी औरत के लिए नौकरी से खुशी से ज्यादा तनाव ही पैदा होता है। नौकरी करनेवाली स्त्री घर तथा बाहर दोनों परिस्थितियों में समन्वय स्थापित नहीं कर सकती। ऐसे समय उसको नौकरी छोड़नी पड़ती है या तनाव की स्थिति में जीवन बिताना पड़ता है। आधुनिक स्त्री के सामने कई समस्माएँ थी जिसके कारण उसे कामकाजी बनना पड़ा।

कामकाजी बहन अपनी सभी इच्छाओं आकांक्षाओं को मारकर पारिवारिक समस्माओं में उलझ जाती है। परिवर्तन के इस संद्रों में बहन का रिश्ता औपचारिक बनते जाता है। उषा प्रियंवदा की जिंदगी और गुलाब के फूल कहानी की वृंदा कामकाजी स्त्री है। स्त्री जब नौकरी करने लगी तो वह न केवल आर्थिक दृष्टि से स्वावलंबी हुई वरन माता - पिता तथा छोटे भाई बहनों की जिम्मेदारियों को भी स्वीकार करती है। जिंदगी और गुलाब के फूल कहानी में सुबोध जब तक कमाता था परिवार का संचालन वही करता था। किंतु जबसे बेकार बैठता है तब बहन कमाने लगती है और घर वही चलाती है तब भाई बहन का रिश्ता भी खोखला लगता है। पुरुष प्रधान समाज में नारी की सत्ता का बोध बूंदा के पात्र से कराया गया है। इसलिए कहते हैं कि आज का समाज न तो पुरुष प्रधान है, न नारी प्रधान वह है मात्र अर्थ प्रधान। जहाँ स्त्री नौकरी करते हुए अपनी इच्छाओं को दमन कर के जीती है, तो दूसरी और बेटे की खुशी के लिए अपमान भी सहलेती है।[16,17]

भीष्म साहनी की कहानी चीफ की दावत में एक बूढ़ी औरत अपने बेटे के लिए अपमान सह कर भी उसकी भलाई के बारे में सोचती है। कहानी का नायक मि . एमामनाथ अपने पदोन्नति पाने के लिए अपने चीफ को दावत के लिए घर बुलाते हैं। किंतु घर सजाते समम माँ को सबसे बड़ी अड़चन मानकर उसको घर से हटाने के लिए सोचते हैं नहीं होता तो डांटकर चीफ के सामने अच्छी तरह से पेश आने के लिए कहते हैं। किंतु वही काँपती हुई माँ का व्यक्तित्व और उसकी फुलवारी चीफ को अच्छे लगते हैं। बेटे की पदोन्नति के लिए माँ की आँखे स्पष्ट दिखाई न ऐसे पर भी फुलवारी बनाना उसे महान बनाता है।

आज के युग में नारी हर एक क्षेत्र में काम कर रही है। वैसे ही राजनीति में भी पीछे वहीं है। इस क्षेत्र में मंत्री भी बन चुकी है। उदाहरण के लिए खरीदार कहानी की नायिका नीना है। नीना की माँ बेटी की शादी के लिए २०००० रुपए दहेज देना चाहती है, किंतु नीना बिल्कुल दहेज का विरोध करती है और अपनी माँ से स्पष्ट रूप से कहती है कि मैं यह शादी नहीं करूँगी। नीना स्वमं अविवाहित रहकर दहेज लेनेवालों के। मूँहतोड़ जवाब देना चाहती है। आत्मविश्वास के साथ परिश्रम कर आए . ए . एस पास करनी है। इसके उपरांत पदोन्नति पाकर वह गृहमंत्रालय में संयुक्त सचिव के पद पर पहुंचती है। आज नीना के पास सब बुछ है तो लड़के बदसूरत नीना से विवाह करने के लिए उसके पीछे घूमते हैं।

मन्नू भंडारी की ईसा के घर इंसान मनोवैज्ञानिक कहानी है। यह एक ऐसे कालेज की कहानी है, जहाँ फादर, मदर, टिचर्स सभी को नियम का पालन करना तथा नियम उल्लंघन की सजा भी भुगतनी पड़ती है। लेकिन सिस्टर एंजिला कड़े नियम की सख्ती से विद्रोह करती है। मन्नू भंडारीजी का संकेत उस कालेज में पड़नेवाली नर्सों की मानसिक स्थिति की ओर है। एंजिला कहती है कि मैं नहीं रहुंगी यहां मैं कभी नहीं रहुंगी देखो मेरे रूप को। मैं अपनी जिंदगी को, अपनी सूरत को चर्च की दीवारों के बीच नष्ट नहीं होने दूंगी। आदमी की तरह जिंदा रहना चाहती हूँ। मैं इस चर्च में घुट - घुटकर नहीं मरूंगी, मैं भाग जाऊँगी नारी के सच्चे रूढ़िमुक्त स्पंदन को इस कहानी में चित्रित किया है। उसका दंद्व वर्तमान विषम परिस्थितियों से विद्रोह की दृष्टि से सार्थक सिद्ध हुआ है। नारी तुम केवल श्रद्धा हो, विश्वास रजत नग पग तल में। पीयूष सी बहा करो, जीवन के सुंदर सम तल में।।

प्रसाद जी ने नारी के लिए ऐसा कहा था। अर्थात स्त्री को अपनी विचारों को व्यक्त करने का स्वातंत्रा नहीं था। किंतु आज सी बिल्कुल बदल चुकी है। आज स्त्री शिक्षित होने कारण अपने विचारों को मुक्त रूप से व्यक्त करने लगी है। पुरुष के साथ - साथ स्त्री भी आज सभी क्षेत्रों में पदार्पण कर चुकी है। नारी के विविध पहलुओं को हिंदी साहित्य के सभी विधाओं में चित्रित किया गया है। इसलिए हिंदी साहित्य में स्त्री का पात्र महत्वपूण हैं।

नारी समाज की सृष्टिकर्ता है अर्थात जन्मदात्री है। वह माता पुत्री, बहु, बहन, प्रेमिका मित्र जैसे रूपों की अधिष्ठता हैं। भारतीय परंपरा में उसे दुर्गा, काली, लक्ष्मी, सरस्वती आदि दैवी रूपों के समान देखा जाता है। वेदों एवं शास्त्रों में वह पूज्मनीय हैं। इन सबके बावजूद आज व्यवहारिक धरातल पर समाज में स्त्री का स्थान निम्नस्तरीय ही रहा है।[18,19]

२१ वीं सदी में स्त्री - विमर्श एक स्वतंत्र विकसित विमर्श के रूप में उभर के सामने आया है। वर्तमान काल में विमर्श के साथ दो शब्द बढ़ी दृढ़ता से जुड़े हुए दिखाई देते हैं - स्त्री और दलित। आज हम आधुनिक युग में महिला सशक्तिकरण, नारी आत्मसम्मान, नारी मुक्ति, नारी आस्मता एवं नारी के समान अधिकारों की बात करते हैं किंतु आज भी नारी की स्थिति गंभीर है। आज भी वह सभी तरह के शोषण की प्रतीक है जिसके पीछे निहित कई कारण तथा मानसिकता है। स्त्री को अपने अस्तित्व के बोध ने विमर्श की प्रेरणा दी। आत्मसमर्पण और पुरुष की एकाधिकारी माहौल से स्त्री को बाहर लाने का श्रेम स्त्री विमर्श को ही दिया जा सकता है।

नारी आस्मता की पहचान, स्व की चिंता, आस्मता बोध और अधिकार जताने व बतलाने का विचार चिंतन ही स्त्री - विमर्श कहलाता है। सदियों से होते आये दमन एवं शोषण ने ही स्त्री विमर्श को जन्म दिमा है। सुप्रसिद्ध लेखिका मृणाल पांडे के अनुसार नारी विमर्श कतई स्त्रियों के वृहतर समाज से अलग - अलग रखकर देखने और हर क्षेत्र में पुरुषों खिलाफ उन्हें प्रोत्साहित करने का दर्शन नहीं है, यह तो एक समग्र दृष्टिकोण है।

हजारों सालों से पितृसत्तात्मक मनःस्थिति का भोग बनी स्त्री आज मुक्त होना चाहती है। वह उस जमीन की तलाश में है जिसमें पुरुष - प्रधान मनःस्थिति की बू नहीं आती हो। आज का स्त्रीवादी साहित्य इसी प्रस्तुत का प्रमाण है। स्त्री को मानवीय बनाना स्त्रीवादी साहित्य का महत्वपूर्ण उदेश्य है। वर्तमान स्त्रीवादी रचनाकारों ने स्त्री की मानसिकता को बड़ी सुक्ष्मता से जाना - पहचाना और उसे अपने लेखन में स्थान भी दिया। पुरुष एवं महिला रचनाकारों में स्वमं महिलाएँ अपनी आस्मता को उजागर करे में प्रतिबद्ध हुई हैं।[20,21]

हमारे देश में स्त्री चिंतन की शुरुआत मुख्म रूप से स्वतंत्रता आंदोलन से होती है किंतु इसके बीच वैदिक युग से ही देखने को मिलता है। वैदिक युग में ही स्त्री अपनी अस्तित्व का प्रश्न उठाती हुई दिखाती है। वैदिक ऋषिका रोमशा कहती है - हे पति राजन। जैसे पृथ्वी राज्याधारण एवं रक्षा करनेवाली होती है वैसे ही मैं प्रशंसित रोमों वाली हूँ। मेरे सभी गुणों को विचारों मेरे कामों को अपने सामने छोटा न मानो। हिंदी साहित्य के आधे इतिहास की लेखिका डॉ . सुमन राजे के अनुसार संभवतः यह पहला प्रमाण है जब किसी स्त्री ने अपनी क्षमता के मूल्मांकन का समान अधिकार प्राप्त करने के लिए आवाज उठाई है।

स्त्री की स्थिति सुधार को लेकर सामाजिक एवं राजनीतिक क्षेत्रों में चल रहे आंदोलनों का व्यापक प्रभाव हिंदी साहित्यकारों पर पड़ा। महिला उपन्मासकारों के उपन्यासों में स्त्री - विमर्श से जुड़े विविध पहलुओं का अध्ययन करना ही इस आलेख का उद्देश्य है। आज की प्रमुख महिला उपन्यासकारों में राजी सेठ, उषा प्रियंवदा, मृदला गर्ग, कृष्णा सोबती शुभा वर्मा, मैत्रेमी पुष्पा, मेहरूनिसा परवेज, प्रभा खेतान तथा मृणाल पांडे के उपन्ययासों में स्त्री चेतना, स्त्री मुक्ति, शोषण, समानता, स्वतंत्रता, वैवाहिक एवं पारिवारिक समस्या, आर्थिक पराधीनता एवं स्वाधीनता जैसे स्त्री विमर्श से जुड़े हुए कई पक्षों के उजागर किया है।[22]

महिला उपन्मासकारों में अग्रणी लेखिका राजी सेठ के उपन्यास तत्सम में पितृसत्तात्मक व्यवस्था के साये में उपन्यास की नायिका वसुधा का द्वंद है। तत्सम शब्द का अर्थ और प्रतीकार्म है - उसे जो उसके समान है ढूढ़ना। इस मात्रा में वसुधा को अजीब - अजीब तरह के अनपेक्षित सुख दुख से भरे हुए दारुण अनुभवों से गुजरना पड़ता है। वसुधा के सामने अजीब सी स्थिति, एक अजीब सा द्वंद है। वह मायके आ जाती है, विश्वविघालय में नौकरी करने लगती है। पर वह कोई सामान तो नहीं, जिसे बदल दिया जाए मा फिर एक स्थान पर रख दिया जाए। वसुधा को उसका पति शरत एक जीती - जागती जिंदगी मानता है। उसका तर्क है कि जूता टूट गया दूसरा ले आओ, घड़ी बिगड़ गई दूसरी खरीद लो, कपड़ा फट गया फिर सिलवा लो और यह जीती जागती जिंदगी। अरे सारे कायदे कानून सारी रोक - टोक जिंदगी को डुबोने के लिए ही है ... एक उसे ही नाकाम कर देने के लिए। वसुधा का आनंद में रुचि लेना इसकी परिणति है।

रुढ़ियों और परंपराओं ने स्त्री को चारदीवारों में केद कर दासी की भूमिका दे दी है। उसी दायरे को लेकर लिखनेवाली उषा जी का एक नई विचारधारा से लिखा गया रोचक उपन्यास अंतर्वशी है। इसकी नायिका वाना एक अति साधारण परिवार की लड़की है जो माँ के अभाव में गरीब पिता व बाबुओं के संरक्षण में पतली है। वह मात्र दसवीं तक पढ़ी है लेकिन उसकी शादी अमेरिका में निवेश के साथ कर दी जाती है। रूप और सौंदर्म के सिवा उसके पास कुछ भी नहीं। उपन्यास के अनुसार - बुद्धिहीन सुंदर स्त्री क्या है, अलोनी छुइमा। इस प्रकार उषा जी द्वारा रचित उपन्यास में नारी मुक्ति एवं नारी स्वातंत्रा से जुड़े महत्वपूर्ण प्रश्न उठाए गए हैं।[23,24]

मृदला गर्ग के उपन्यास कठगुलाब में भी नारी मुक्ति एवं चेतना का प्रखर रूप सामने आता है। इस उपन्यास में दो नारिमाँ असीमा तथा स्मिता ने मिलकर सहकारी संस्था का निर्माण किया परंतु पुरुष वर्ग उनके इस कार्म में सहयोग नहीं करते है। असीमा पुरुष वर्ग की मानसिकता को अच्छी तरह जानती है। वह कहती है - इस देश में औरते या माँ है या पैर की जूती। इनसे काम कराने के लिए अम्मा बनना जरूरी है क्या ? असीमा के माध्मम से मह स्वमं लेखिका का ही स्वर है जो स्त्री विमर्श की प्रबल प्रस्तुति करता है और सिर्फ मातृत्व को ही स्त्री जीवन की उपलब्धि मानने से इंकार करता है। कृष्णा सोबती के उपन्यास समय सरगम में स्वमं लेखिका बूढ़े होने की गरिमा के बीच भी जीवन का एक क्षण पूरी निजता से जी लेने की चाह एवं विचारों का गंभीर स्वर है। कृष्णा सोबती के सत्तर वर्षीय जीवन की जिंदादिली की कथा नामिका आख्मा के चरित्र में स्पष्ट झलकती है।

शुभा शर्मा जी ने फ्रीलान्सर उपन्यास की इतनी प्रसिद्धि हुई है कि वह पाठकों के बीच ही नहीं बल्कि आलोचकों में भी धूम मचा गई। मह उपन्यास पत्रकारिता जीवन को केंद्र में रखकर लिखा गया है। लेखिका ने अपने जीवन के इस क्षेत्र को काफी नजदीकी से देखा है इसलिए इसमें घटनाएँ एवं पात्र सीधे जीवन से उठाए गए प्रतीत होते हैं। इस उपन्यास की प्रमुख पात्र शाहना चैधरी एक फ्रीलान्सर पत्रकार हैं जो अपना निजी जीवन भी मुक्त एवं स्वच्छंद पत्रकारिता की भाँति ही स्वच्छंदता से जीना चाहती है। भारतीम समाज में मुक्त पत्रकारिता के कार्म अविवाहित स्त्री के लिए अनेक कठिनाइमों से भरा है। यह क्षेत्र अपने अंतविरोधों, विडंबनाओं एवं विसंगतिमों से भरा है। इन सबके बावजूद नामिका बिना किसी दुराव के पूर्ण मनोबल के साथ उन्मुक्त जीवन शैली को अपनाती है। शुभा वर्मा नारी - चेतना एवं भावनाओं को बहुत आगे ले जाती हैं, जहाँ उसका व्यक्तित्व सबसे महत्वपूर्ण हो जाता है। वह समाज से अपना हक हासिल करती है, छीनती है किंतु घुट - घुट कर नहीं मरती है।[25,26]

मैत्रेयी पुष्पा का लेखन स्त्री विमर्श में चेतना की मुखर अभिव्मक्ति द्वारा स्वतंत्र नारी की आस्मता और उसके सशक्तीकरण की एक जमीन तैयार करता है। उनके चर्चित उपन्यास इदन्नम की नायिका मंदाकिनी तथा अन्य स्त्री पात्रों के विरोधी चेतना के मूल में मंदा द्वारा बनामा गया सामंती ढाँचा है जो स्त्रिमों के अधिकारों का हनन करता है।

नारी शोषण के विरुद्ध आवाज उठाने वालों में मेहरुन्निसा परवेज प्रमुख लेखिका हैं। उन्होंने अपनी रचनाओं के माध्मम से नारी जीवन का जो चित्रण किया है, उससे यही स्थिति सामने आती है कि नारी का जीवन बंधनों से आज भी मुक्ति नहीं पा सका है। कोरजा उपन्यास की नायिका फातिमा की मही स्थिति है।

महिला उपन्यासकारों में स्त्री विमर्श की बात हो और मृणाल पांडेका नाम न आए तो बात अधूरी रह जाती है। इन्होंने विरुद्ध, रास्तों पर भटकते हुए, पटरंगपुर पुराण, देवी ... उपन्यासों में नारी

- चेतना के स्वर को प्रखर किमा है। उनके अनुसार आज का नारी लेखन हमारी मानसिक तुष्टि के लिए एक विस्फोट द्रव्य के समान है। हमारी शांति को भंग कर देनेवाला और कष्टदायक है। मह हमारी प्रचीन मान्यताओं और मानसिक जड़ता को गति देनेवाला एक ऐसी विध्वंसक शक्ति के रूप में प्रकट हुआ है, जो हमें फिर से नए निर्माण के लिए प्रेरित करता है। ... अति विलास, अति वैभव, अति सफलता और उसके लिए चुकाए जाते मूल्य, किए जाते घिनौने समझौते अन्नतः नारी को कितना खोखला, कितना कंगाल, कितना दयनीय बना देता हैं उसका मूर्तियन्त उदाहरण है स्त्री विमर्श।[27]

प्रभा खेतान जी का छिन्नमस्ता उपन्यास भी काफी चर्चित रहा है। इस उपन्यास में मारवाड़ी परिवार की एक - एक युवती अपने ही घर में बेगाने होते जाते हैं। सभी भाई, पति द्वारा उत्पीड़ित किए जा रहे हैं। स्त्री उत्पीड़न की इस कथा को प्रभा खेतान ने बखूबी चित्रित किमा है। नारी के महत्व पर प्रकाश डालते हुए महादेवी वर्मा कहती है कि वास्तव में नारी ही प्रेरणा शक्ति का नाम है और पुरुष संघर्ष शक्ति का। प्रेरणा और संघर्ष का संगम ही पूर्ण जीवन है। पुरुष का जीवन संघर्ष से आरंभ होता है ओर स्त्री का आत्मसमर्पण से।

समकालीन महिला उपन्यासकारों ने स्त्री विमर्श को एक आंदोलन के रूप में देखा है। स्त्री विमर्श से संबंधित उपन्यास अधिकतर नारी द्वारा ही लिखे गए है हालांकि पुरुषों द्वारा भी नारी चिंतन एवं आस्मता का स्वर उपन्यासों में ध्वनित होता है। स्त्री विमर्श के इस आंदोलन में स्त्री की शिकायतों, उसके प्रकट अप्रकट क्रोध, छिपे हुए आक्रोश तथा जीवन के प्रति उसके विशिष्ट दृष्टिकोण को अति महत्वपूर्ण बनाकर अभिव्यक्त किया गया है।

विवेच्य महिला लेखिकाओं के उपन्यासों में स्त्री विमर्श से जुड़े सभी पक्षों को उजागर किया गया है। डॉ . प्रांजल पाठक ने स्त्री विमर्श पर प्रकाश डालते हुए कहते है कि औरतें स्त्रीवाद की न केवल कर्ता हैं, बल्कि वे ही शक्ति हैं और एक औरत के रूप में एक होकर स्त्रीत्ववाद के सत्ता विमर्श को अर्जित करना उसका सार है, क्मोंकि तभी वह कर्ता बन सकती है। स्त्री विमर्श के संदर्भ में इस दृष्टिकोण को आज की महिला लेखिकाएँ सार्थक करती हुई प्रतीत होती है।

निष्कर्ष

स्त्री ईश्वर की अदभुत सृष्टि है। स्त्री शक्ति, शील और सौंदर्य की मूर्ति है। पुराने जमानें से लेकर भारत में शक्तिपूजा की परंपरा रही है। स्त्री सशक्तिकरण की बात सदियों से चली आ रही है । और यही सशक्तिकरण उपन्यासों के माध्यम से भी व्यक्त होता दिखाई दे रहा है। स्त्री संघर्ष करते हुये आगे बढ़ रही है। उसके सामने अनेक चुनौतियाँ है उनका सामना भी बड़े धैर्य के साथ कर रही है। स्त्री - विमर्श अर्थात स्वत्व को खोजने की प्रक्रिया है। अपनी पहचान शक्ति और सत्ता को जानने की कोशिषष्श करते हुये स्त्री जागरण की बात उपन्यासों के माध्यम से व्यक्त होती दिखाई देती है। उपन्यास समाज के साथ चलने वाली साहित्यीक विधा है। साहित्यिक विधा में स्त्री को सही रूप से जानने पहचानने की कोशिश की गयी है।

वर्तमान समय में उपन्यास साहित्य की सबसे सशक्त विधा है। उपन्यास के माध्यम से जीवन में होने वाली घटनाओं व तथ्यों को गत्यात्मक रूप से पाठक के समक्ष लाया जाता है। जीवन की अनेक समस्याएँ उपन्यासों के माध्यम से व्यक्त की जाती हैं व समाधान पाती हैं। लेखक के शब्द पाठक के भावों से जुड़कर उपन्यास को आँखों देखे वर्णन में प्रतिरूपित कर देते हैं। कदाचित् इसीलिए मुंशी प्रेमचंद ने उपन्यास को मानव जीवन का चित्रमात्र कहा है। मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। समाज में रहने के कारण विभिन्न समस्याओं-विकृतियों-आदर्शों आदि से उसे दो-चार होना पड़ता है। विभिन्न प्रकार की सामाजिक समस्याओं को चित्रित करने वाले उपन्यास सामाजिक उपन्यास कहलाते हैं। हिंदी उपन्यास जगत् में समाज के यथार्थ रूप का चित्रण प्रेमचंद युग की देन मानी जाती है। प्रेमचंद ने सुधारवादी दृष्टिकोण का प्रतिपादन किया। प्रेमचंद ने अपने उपन्यासों में मानवतावाद व आदर्शवाद की परम्परा को मुखरित किया। प्रेमचंद के पश्चात् लेखकों की ऐसी लम्बी परम्परा है, जिन्होंने सामाजिक उपन्यासों की रचना की। इन उपन्यासों में जाति-पाति, अंधविश्वास, किसानों का शोषण, अशिक्षा, राजनीति आदि को उभारा गया। इसी क्रम में महिलाओं की समस्याओं पर भी कथानकों का सृजन किया गया। अनमेल विवाह, बहुविवाह, तलाक़, विधवा विवाह, बाल विवाह, वैधव्य, पर्दाप्रथा जैसी समस्याएँ लेकर जब ये उपन्यास अवतीर्ण हुए तो लोगों का ध्यान इनकी ओर आकर्षित हुआ। प्रेमचंद ने अपने अनेक उपन्यासों में नारी जीवन की समस्याओं व उनके आदर्शवादी समाधानों पर अपनी क़लम चलाई है। प्रेमचंद की सूक्ष्मदृष्टि, पकड़ व गाम्भीर्य की ओर सबका ध्यान गया। स्त्रियों की स्थिति का यथार्थ चित्रण जब समाज ने देखा तो समाज की दृष्टि इस ओर भी गई। इससे एक नया विमर्श उत्पन्न हुआ 'स्त्री चिंतन का विमर्श'। वैदिक काल में नारियों को देवी की उपमा प्रदान की गई। आदिकालीन साहित्य में वह सुलभ वस्तु मानी गयी। भक्तिकाल में उसे माया-मोहिनी की संज्ञा मिली तो रीतिकाल में नारी श्रृंगार व भोग की वस्तु बन गयी। आधुनिक काल में नारी की स्थिति में थोड़ा परिवर्तन आया। उसे अपने अस्तित्व का आभास हुआ। परिवार व समाज की सीमाओं से बाहर निकलकर नारी ने अपनी अलग पहचान बनाने का प्रयत्न किया और बहुत हद तक इसमें सफलता भी प्राप्त की।[27,28]

डॉ. प्रदीप श्रीधर की आलोचनात्मक कृति 'स्त्री चिंतन की अंतर्धाराएँ और समकालीन हिंदी उपन्यास' इस ज्वलंत व महत्त्वपूर्ण विषय पर उनके व्यापक चिंतन का प्रतिफल है। पितृसत्तात्मक-पुरुषवर्चस्ववादी सत्ता की सामाजिक संरचना का विश्लेषण व विवेचन प्रस्तुत कृति में किया गया है। अध्ययन की सरलता के लिए कृति दो खंडों—विचार खंड व मूल्यांकन खंड में विभाजित है। विचार खंड में कुल पाँच अध्यायों के अन्तर्गत स्त्री विमर्श का इतिहास, भारतीय संदर्भ में स्त्री सशक्तिकरण, गाँधीवाद का प्रभाव व समकालीन परिदृश्य में स्त्री विमर्श का स्वरूप दर्शाया गया है। कृति का प्रथम अध्याय 'भारतीय नवजागरण: स्त्री अस्मिता के संदर्भ' भारतीय समाज में इस मुद्दे पर जागरूकता का सुन्दर इतिहास दर्शाता है। लेखक ने नवजागरण के अर्थ को परिभाषित करते हुए इस कार्य में समाज-सुधारकों की भूमिका का सम्यक् वर्णन किया है। सखी समिति (1886), गुजराती स्त्री मंडल (1903), भारतीय महिला परिषद् (1904) जैसे महिला संगठनों ने इस दिशा में महती भूमिका निभाई। इन महिला संगठनों के राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक क्षेत्रों में योगदान की विस्तृत चर्चा विद्वान लेखक ने की है। लेखक का इस संदर्भ में कथन उचित ही है, "बीसवीं सदी के प्रथम

अर्द्धांश को 'नारी जागरण का युग' कहा जा सकता है और स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् जो युग आरंभ हुआ उसे 'नारी प्रगति का'। "

पुस्तक का द्वितीय अध्याय 'स्त्री सशक्तिकरण के भारतीय संदर्भ' वर्तमान समय में भारत की स्त्री जनसंख्या का सांख्यिकीय निदर्शन करता है। स्त्री शक्ति का आकलन, इसके बाधक तत्त्व; इसके सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक संदर्भ व इस दिशा में किए गए प्रयासों का पूर्णतया सुसंदर्भित आँकड़ेवार वर्णन यहाँ है। लेखक ने विभिन्न आयोगों व योजनाओं की विस्तृत सूची भी इस संदर्भ में दी है, जिसमें आँकड़ों को दर्शाकर अपनी बात प्रमाणित भी की गई है। ग्रामीण परिवेश की महिलाएँ आज भी पिछड़ी व शोषित हैं। लेखक ने इसे चुनौती के रूप में माना है व इनके समुत्थान के कारगर उपाय भी सुझाए हैं।

गाँधी जी का भारतीय राजनीति में पदार्पण अनेक नये विमर्शों को साथ लेकर आया है। बेसिक शिक्षा, नारी उत्थान, मद्यनिषेध, स्वच्छता जैसे मुद्दों पर हमें पूरा गाँधी दर्शन मिलता है। 'गाँधीवाद की भूमिका और नारी उत्थान' नामक तृतीय अध्याय में महात्मा गाँधी के विचारों पर लेखक ने मनन किया है। वेश्या उद्धार, पर्दाप्रथा का विरोध, बाल विवाह का विरोध, विधवा विवाह का समर्थन, सती प्रथा की निंदा, अंतर्जातीय विवाह का समर्थन जैसे उपखंडों में गाँधीजी को समग्रता के साथ समझा जा सकता है। लेखक अंत में निर्णय देता है, "वर्तमान वैश्वीकरण के संदर्भ में स्व अस्तित्वनिर्मात्री नारी, गाँधीजी के पूर्ण मानवीय लक्षणों से युक्त नारी का अधिकांश अंश में प्रतिनिधित्व करती है।" आज की बालिका कल की नारी है। जितनी शिक्षित बालिका होगी, उतनी ही शिक्षित आने वाली पीढ़ियाँ होंगी। कृति का चौथा अध्याय 'बालिका शिशु: समकालीन परिदृश्य की चुनौतियाँ' को बालिकाओं के अधिकार का घोषणापत्र कहा जा सकता है। विद्वान लेखक ने बालिकाओं की सामाजिक स्थिति पर यहाँ प्रकाश डाला है। पुरुषवादी समाज में स्त्री का वर्चस्व नहीं है। समाजवैज्ञानिक इस दिशा में शोधरत् हैं। यद्यपि सैद्धान्तिक रूप से स्त्री-पुरुष को समान माना गया है परंतु व्यावहारिक रूप में ऐसा नहीं है। आज भी लड़कियों की अशिक्षा, बाल-विवाह, भ्रूणहत्या जैसी सामाजिक कुत्साओं से हम दो-चार होते हैं। लेखक ने इसका एक बड़ा कारण बालश्रम को भी माना है। विभिन्न मौलिक अधिकारों, नीतिनिर्देशक तत्त्वों के निर्देशों के बावजूद भी यह एक बड़ी समस्या है। इसी क्रम में पाँचवा अध्याय 'कामकाजी महिला और समकालीन परिदृश्य' भी रखा जा सकता है। आदिकाल से ही स्त्री को घरेलू काम करने की सीख दी जाती रही है। तब से लेकर अद्यावधि स्त्रियाँ घरेलू कामों के साथ-साथ बाहरी नौकरियों में भी अपना वर्चस्व रखने लगी हैं। वैसे आज स्थिति यह है कि घरेलू महिलाओं की तुलना में कामकाजी स्त्रियों का सामाजिक-आर्थिक स्तर ऊँचा होता है परंतु विडम्बना यह भी है कि आज भी स्त्री को निर्णय लेने में पति-परिवार की आज्ञा का पालन ही करना पड़ता है। उसकी अपनी स्वतंत्रता इन अर्थों में अर्थहीन हो जाती है। कामकाजी महिलाओं से परिवार की आर्थिक स्थिति सुदृढ़ होती है।

वास्तव में पुस्तक का विचार खंड, स्त्री विमर्श का समाजशास्त्रीय विवेचन प्रस्तुत करता है। विभिन्न आँकड़ों के प्रयोग लेखक की बात को पुष्ट व प्रमाणित करते हैं। नारी सशक्तिकरण का सैद्धान्तिक आधार प्रस्तुत खंड तैयार करता है। पुस्तक का द्वितीय खंड 'मूल्यांकन' खंड है। इस खंड में कुल दस उपन्यासों की समीक्षा स्त्री अस्मिता के संदर्भ में की गई है। ये उपन्यास नारी-केंद्रित विमर्श की भूमिका निभाते हैं। विभिन्न चिंतकों-विचारकों की दृष्टि में जब नारी विमर्श, स्त्रीवाद, स्त्री चिंतन जैसे शब्द आए; तब फ्रांस, अमेरिका और ब्रिटेन जैसे देशों में इन सामाजिक आंदोलनों का सूत्रपात हुआ। प्रारम्भिक चरण में इसके दो रूप दिखाई देते हैं—फ्रांसीसी स्त्रीवाद जो साहित्य से जुड़ा था और दूसरा अमेरिकी स्त्रीवाद जो राजनीतिक आंदोलनों से जुड़ा था। भारत में इस विमर्श पर पश्चिम से आयातित होने का आरोप लगाया जाता है, परंतु यह सत्य नहीं है। वैदिक काल से ही हमारे यहाँ नारी को देवी का रूप मानकर उसकी प्रशंसा और स्तुति की गई है। वर्तमान समय में लेखक ने नारी विमर्श की चर्चा करते हुए नारी के सभी रूपों को प्रदर्शित किया है। डॉ. प्रदीप श्रीधर ने इसी परिप्रेक्ष्य में कुल दस उपन्यासों को चुना है जो नारी सशक्तिकरण के आख्यान बनकर हमारे सामने आते हैं। उषा प्रियंवदा का 'शेष यात्रा'(1984) अनु के जीवन की कहानी है। अनु का पति प्रणव उसे गुड़िया के सामान सजावटी बनाये रखना चाहता है। अपने आत्म का बोध जब अनु को होता है, तब वह मेडिकल की पढ़ाई करके डॉ. अनु बनती है। इस लम्बी जीवनयात्रा की परिस्थितियों को दर्शाता 'शेष यात्रा' नारी सम्वेदना के सच्चे रंग दिखाता है। पति की पारम्परिक दूषित छवि दर्शाता 'छिन्नमस्ता'(1993) नरेंद्र और प्रिया के वैवाहिक सम्बंधों की कहानी है। इसी क्रम में 'मुझे चांद चाहिये'(1993), 'एक पत्नी के नोट्स'(1997) जैसे उपन्यास भी नारी पर लगाए गए आक्षेपों, वर्जनाओं की अभिव्यक्तियाँ हैं। हरिमोहन के उपन्यास 'अकेले-अकेले साथ'(2000) में नारी की अंतर्व्यथा और मुक्ति-कामना का अंकन किया गया है। स्त्री-पुरुष सम्बंधों में विश्वास व मानवीय सरोकारों का होना आवश्यक है जिनमें समान अधिकार भी शामिल हैं। [29]

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी का कथन है, "पुरुष स्वभावत: नि:संग व तटस्थ होता है, नारी ही उसमें आसक्ति उत्पन्न कर उसे नवनिर्माण के प्रति उन्मुख करती है। पुरुष अपनी पुरुष प्रकृति के कारण द्वन्द्वरहित हो सकता है लेकिन नारी अतिशय भावुकता के कारण सदैव द्वन्द्वोन्मुख होती है। इसलिए पुरुष मुक्त है और नारी बद्ध।" मेहरुन्निसा परवेज़ का उपन्यास 'अकेला पलाश'(2002) ऐसे ही पुरुषपाश में बद्ध नारी तहमीना की कहानी है। डॉ. श्रीधर का निष्कर्ष कितना उचित है, "नारी के शोषण में सिर्फ़ पुरुष ही होता है, यह सारा समाज जानता है। इसके उपरान्त भी दोषी स्त्री ही होती है। उसके लिए क्षमा का अवसर भी नहीं है।" 'इस दौर में हमसफ़र (2002), अल्मा कबूतरी (2004), आवाँ (2005) जैसे उपन्यास भी स्त्री व्यथा, स्त्री क्षमता व स्त्री संघर्ष की करुणकथा हैं। स्त्री चिन्तन की बदलती लीक को भी यहाँ ध्वनित किया गया है। लेखिका चंद्रकांता का उपन्यास 'अपने-अपने कोणार्क'(2006) मुख्य चरित्र कुनी के आजीवन कुँवारी रहने का प्रतिचित्रण करता है। कुनी के सारहीन व्यक्तित्व पर पड़ने वाले नकारात्मक प्रभावों तथा डॉ. त्रिपाठी द्वारा किए गए शोषण को भी हम यहाँ देखते हैं। अंत में नायिका कुनी का आत्मविश्वास पाठकों को झकझोर जाता है और कर्मठता की प्रेरणा देता है।

प्रस्तुत कृति में डॉ. प्रदीप श्रीधर ने स्त्री विमर्श के संदर्भ में जिन उपन्यासों का चुनाव किया है, वे सभी एक प्रकार से प्रतिनिधि

रचनाएँ ही हैं। लेखक का यह चयन प्रभावित करता है। विचार खंड में लेखक का कठिन परिश्रम व स्वाध्याय दिखाई देता है। वास्तव में स्त्री विमर्श पुरुषों का नहीं अपितु उनकी मानवीयता घटाने वाले उस छद्म मुखौटे का प्रतिकार करता है जो मर्दानगी के नाम पर गढ़ा गया है। इससे उत्पीड़न व शोषण की भावनाओं को बल मिलता है। विद्वान लेखक ने विभिन्न निष्कर्षों की कसौटी पर अपनी बात को कसा है। वास्तविकता तो यह है कि पुरुष वर्ग स्त्री-पुरुष समानता की अवधारणा को व्यावहारिक धरातल पर न सह सकता है और न ही स्वीकार कर सकता है। 'स्त्री चिंतन की अन्तर्धाराएँ और समकालीन हिंदी उपन्यास' इसी परिदृश्य को विचारात्मकता, विश्लेषण व विवेचना की कसौटी पर कसती है। पुस्तक की भाषा अत्यन्त प्रांजल व परिनिष्ठित है। अधिकांश आलेखों को संदर्भ सहित दिया गया है, जिससे पुस्तक की उपादेयता में सार्थक अभिवृद्धि हुई है। विद्वान लेखक ने गहन शोधात्मक दृष्टि से ऐसे नाज़ुक किन्तु अति महत्त्वपूर्ण विषय पर अपनी समर्थ क़लम चलाई है।

डॉ. प्रदीप श्रीधर की प्रस्तुत कृति नारी विमर्श की ओर नवीन दृष्टि, सार्थक अनुसंधान और नैसर्गिक चिन्तनाओं का मार्ग प्रशस्त, प्रतिफलित व प्रतिज्ञापित करती है; इसमें संदेह नहीं। वर्तमान में नारी विमर्श पर शोध-समीक्षा-अनुसंधान का स्तुत्य कार्य किया जा रहा है, जिसमें यह कृति मील का पत्थर है।[28,29]

संदर्भ

[1] चर्चा हमारी - मैत्रेयी पुष्पा - पृ.सं.21

[2] स्त्रीत्ववादी विमर्श – समाज और साहित्यः क्षमा शर्मा – पृ.सं,101

[3] हंस – मार्च 2000 – पृ.सं.45

[4] औरत अपने लिए – लता शर्मा - पृ.सं.149

[5] हंस – अक्तूबर 1996 – पृ,सं.75

[6] स्त्री आकांक्षा के मानचित्र – गीताश्री – पृ.सं.60

[7] मैत्रेयी पुष्पा – इदन्नमम – पृ.सं.16

[8] मैत्रेयी पुष्पा – इदन्नमम – पृ.सं.140

[9] नासिरा शर्मा – शाल्मली – पृ.सं.11

[10] नासिरा शर्मा – शाल्मली – पृ.सं.33

[11] मैत्रेयी पुष्पा – इदन्नमम – पृ.सं.92

[12] मैत्रेयी पुष्पा – इदन्नमम – पृ.सं.159

[13] यामिनी कथा – सूर्यबला – पृ.सं.32

[14] यामिनी कथा – सूर्यबला – पृ.सं.33

[15] मैत्रेयी पुष्पा – इदन्नमम – पृ.सं.24

[16] मैत्रेयी पुष्पा – इदन्नमम – पृ.सं.165

[17] मैत्रेयी पुष्पा – इदन्नमम – पृ.सं.108

[18] नासिरा शर्मा – ठीकरे की मँगनी – पृ.सं.146

[19] खुली खिडकियाँ – मैत्रेयी पुष्पा – पृ.सं.115

[20] हिंदी गध का इतिहास - डॉ . रामचंद्र तिवारी

[21] महिला लेखिकाओं के उपन्यासों में नारी - डॉ . हरवंश कौर

[22] हिंदी उपन्यासों में आस्मता - रत्ना चटर्जी

[23] तत्सम - उपषा प्रियंवदा

[24] अंतर्वशी - उषा प्रियंवदा

[25] फ्रीलान्सर - मूदुला गर्ग

[26] इदननम - मैत्रेमी पुष्पा

[27] छिन्नमस्ता - प्रभा खेतान

[28] विरुद्ध - मृणाल पांडे

[29] रास्तों पर भटकते हुए - मृणाल पांडे